सप्तसरिता

[भारतवर्ष की सात लोकमातायें]

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
इत्येताः सरितो राजन् समाख्याता यथास्मृतिः ॥

—महाभारत, भीष्मपर्व ९-३७

लेखक
काका कालेलकर

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
—शाखायें—
दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।

— संस्करण —
जनवरी १९३७ : १५००
अप्रैल १९४० : १०००

मूल्य
चार आना

मुद्रक
पं० राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव
अध्यक्ष, अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ।

अनुक्रमणिका

१—सखी मार्कण्डी	...	...	...	१
२—कृष्णा के संस्मरण	...	...	...	४
३—गंगामैया	...	...	...	१०
४—यमुना रानी	...	...	...	१५
५—नदी पर नहर	...	...	...	२०
६—सुवर्ण-देश की माता	...	...	...	२३
७—दक्षिण गंगा गोदावरी	...	...	...	२६

उपस्थान

हम सनातनी हिन्दू नदी का जल लेकर नदी का ही अभिषेक करते हैं। नदी हमारी लोकमाता है। अपने बचपन से लेकर अब तक भिन्न-भिन्न अवसरों में जब कभी मुझे किसी नदी में नहाने का सौभाग्य मिला है, तब बड़े अनुराग और आग्रह के साथ उस नदी का माहात्म्य भी मैंने सुना है। स्नान, पान और दान के बिना तो नदी का दर्शन सफल हो ही नहीं सकता।

बचपन से जिन नदियों के दर्शन से मैंने अपने को कृतार्थ किया है उनके नाम से एक-एक स्मरणांजलि भेंट करना मैंने अपना पवित्र कर्तव्य समझा। अपने आश्रमवासी विद्यार्थियों को इसके द्वारा भारत-भक्ति की दीक्षा देने का भी मेरा कुछ विचार था।

यह लेखमाला मूल गुजराती में लिखी गयी थी। गुजरात के बाहर की सोलह नदियों का मैंने इस लेखमाला में वर्णन किया था। अपेक्षा यही थी कि इन्हें पढ़कर गुजरात के भावुक नवयुवक नर्मदा, ताप्ती, मही, साबरमती, अंबिका आदि छोटी-बड़ी गुर्जर-नदियों को अपनी भक्ति का अर्घ्यदान करें। गुजरात ने इस 'उपस्थान' का अच्छा आदर किया। उसे देखकर हिम्मत हुई कि राष्ट्रभाषा द्वारा इसे सारे भारत-वर्ष के कानों तक पहुँचाऊँ। मैंने सोलह में से चुनकर सात ही नदियों के अर्घ्य इस पुस्तिका में दिये हैं।

श्री हृषीकेशजी शर्मा ने मूल गुजराती से हिन्दी में अनुवाद किया है। मैं ख़ुद हिन्दी में करता तो वह इतना साफ़ और शुद्ध शायद कभी न होता।

एक सनातनी हिन्दू की भक्ति की भाषा जिस तरह की हो सकती है, वैसी ही मूल गुजराती में है। उसका हिन्दी-अनुवाद करते समय भाषा की शैली और शब्दों को बदलने से मूल वातावरण नष्ट हो जाता। राष्ट्रभाषा के जिस आदर्श तक हम पहुँचना चाहते हैं, उस आदर्श की शायद यह शैली न हो; फिर भी प्रांतीय भाषाओं का साहित्य जब हिन्दी में आयगा तब उत्तर भारत के हमारे हिन्दू-मुसलमान भाइयों का ऐसी शैलियों का आदी होना बहुत ज़रूरी है, उनसे मेरी इतनी ही नम्र प्रार्थना है।

यह कोई भूगोल की किताब नहीं है, और न यह नदियों के उपलक्ष्य में लिखी हुई निबंधमाला है। यह तो सिर्फ़ अपने देश की लोकमाताओं का भक्तिपूर्वक किया हुआ एक तरह का उपस्थान मात्र है। हमारे आर्य पूर्वजों की नदी-भक्ति प्रसिद्ध ही है। आज भी वह क्षीण नहीं हुई है। आज भी यात्रियों की छोटी-बड़ी मानव-नदियाँ तीर्थ-स्थानों की ओर बह-बहकर उसी प्राचीन-भक्ति के उतने ही ताज़े, सजीव और जागृत होने का प्रमाण दे रही हैं। क्या अच्छा हो कि भक्त-हृदय इन भक्ति के उद्गारों को सुनकर संतुष्ट हो और युवकों में अपनी लोकमाताओं का दुग्धपान करके अपनी संस्कृति को पुष्ट करने की अभिलाषा जाग उठे!

—काका कालेलकर

सप्तसरिता

: १ :

सखी मार्कण्डी

क्या हरेक नदी माता है ? नहीं। मार्कण्डी तो मेरी बचपन की साथिन है। वह इतनी छोटी है कि मैं उसे अपनी बड़ी बहिन भी नहीं कह सकता। अपने खेत में, उस गूलर के पेड़ के नीचे दुपहरी की छाँह में जाकर बैठ जाता हूँ, मार्कण्डी का शीतल और मंद-मंद पवन मुझे ज़रूर बुलाता है। उसके किनारे कई बार बैठा हूँ और हवा की लहरों से डोलती हुई घास की प्यारी-प्यारी पत्तियों को घण्टों निहारता रहा हूँ। मार्कण्डी के तीर पर ऐसा असाधारण और अद्भुत तो कुछ भी नहीं है। न ख़ास क़िस्म के कोई फूल हैं, न रंग-बिरंगी तितलियाँ और न खूबसूरत लुभावने पत्थर ही! अपने कल-कूजन से चित्त को बेचैन करने-वाले छोटे-बड़े जलप्रपात भी वहाँ नहीं हैं। वहाँ अगर कुछ है, तो एक स्निग्ध शान्ति है।

गड़रिये कहते हैं, मार्कण्डी बैजनाथ के पहाड़ों से आती है। पर उसका उद्गम खोजने की मुझे कभी इच्छा नहीं हुई। अगर मेरे हाथ में अपने ताल्लुक़े का नक़्शा आ जाय तो मैं उसमें मार्कण्डी की वह पतली-सी लकीर नहीं खोजूँगा। क्योंकि वैसा करने से वह मेरी सहेली मिटकर, एक नदीमात्र रह जायगी। उसके जल में अपने पैर डुबोकर बैठना मुझे बड़ा ही प्रिय लगता है। उसमें पैर डालते ही उसका 'खल-खल-खल-खल' शब्द शुरू हो जाता है। लड़कपन में हम बहुत बातें करते थे। एक दूसरे का सहवास ही हमारे आनन्द के लिए काफ़ी होता। मैं यह

समझने की परवाह न करता कि मार्कण्डी क्या कहती है और मैं जो कुछ बोलता उसका अर्थ करने के लिए वह बैठी न रहती। हम दोनों के लिए तो इतना ही बस था कि हम एक-दूसरे को लक्ष्य करके बोल रहे हैं। जब भाई और बहिन बरसों बाद मिलते हैं, तो हज़ारों तरह के सवाल पूछते हैं। पर इन सवालों के पीछे कोई जिज्ञासा नहीं होती। यह तो प्रेम को प्रकट करने का एक निराला-सा ढंग है। प्रश्न क्या था और जवाब क्या मिला, प्रेम-मिलन के समय इस तरफ़ ध्यान देने का अवकाश ही किसे रहता है? मैं मार्कण्डी के किनारे गाता हुआ घूमता और मार्कण्डी मेरे उन बाल-गीतों को सुनती रहती।

शंकर की भक्ति के बल से यमराज को पीछे ढकेल देनेवाले मार्कण्डेय ऋषि का, जिन्हें उनकी आयु के सोलहवें बरस में यम-राज लेने आये थे, उपाख्यान गाते हुए मुझे उन दिनों कितना आनन्द आता था!

> 'साधू सुन्दर शाहणा सुत तया सोलाच वर्षे मिति,
> जो कां मूढ़ कुरूप तो शतवरी वर्षे असे स्वस्थिती;
> या देहींत जसा मनात रुचला तो घ्यां तुते दीधला' १.

यह वरदान महादेव ने मृकंड को दिया। ऋषि ने अपनी धर्मपत्नी से पूछा—'दोनों में से कौन-सा वर पसंद करें?' दोनों ने सोचा—एक सद्गुणी बालक ही, भले वह सोलह बरस तक ही जिये, हमारे कुल का उद्धार करेगा, और मन में ऐसा निश्चय

---

१. मार्कण्डेय ऋषि के जन्म से पहले उसके माता-पिता ने भगवान् शंकर से पुत्र मिलने का वरदान माँगा। भगवान् ने कहा कि मैं तुम्हें दो में से एक ऐसा पुत्र देता हूँ, जो एक तो साधु, सुन्दर, सयाना और सोलह बरस तक जीनेवाला होगा, और दूसरा मूर्ख, कुरूप और सौ वर्ष तक वैसा ही रहनेवाला। इन दो में से तुम्हें जो पसन्द हो, ले लो।

करके पहला ही वर माँग लिया। मार्कण्डेय ज्यों-ज्यों बड़ा होकर फला-फूला, माता-पिता का मुँह पीला पड़ता गया। अन्त में, सोलह बरस पूरे हो गये।

तरुण मार्कण्डेय पूजा में बैठा हुआ था। यमराज भैंसे पर सवार होकर पहुँचे। पर शिवलिंग से चिपटे हुए तरुण साधु को पकड़ने की हिम्मत वह कैसे करते! फिर भी पाश फेंका; उधर शिवलिंग में से त्रिशूलधारी शंकर बाहर निकले और इस धृष्टता के लिए यम को बहुत-कुछ भला-बुरा सुनना पड़ा। मृत्युञ्जय महादेव के दर्शन के बाद मार्कण्डेय को मृत्यु का भय भला क्यों रहता? उसकी वह आयु-धारा अबतक बह रही है।

कॉलेज में जब पढ़ता था, तब परीक्षा के बाद 'भैया-दूज' आती थी। खेतों में तैयार फ़सल काटने के दिन होते और दो दिन मुझे खेतों में ही बिताने पड़ते। तब मार्कण्डी मुझे मीठे शकरकन्द खाने को देती और अपना अमृत-सा पानी पिलाती। जब मैं यह देखने के लिए जाता कि रात में वह ठंड के मारे काँप तो नहीं रही है, तब वह अपने स्वच्छ शीशे में मुझे मृग-नक्षत्र के दर्शन कराती थी।

आज भी जब-जब घर जाता हूँ, सखी मार्कण्डी से मिले बिना नहीं रहता। पर अब वह मेरे साथ पहले की तरह अठ-खेलियाँ नहीं करती, ज़रा-सा मुस्कुराकर चुप हो जाती है। मैं उसके सुकुमार चेहरे पर पहले-सा वह लावण्य नहीं देखता; अब तो उसके स्नेह की गहराई को ही बढ़ा हुआ पाता हूँ।

: २ :

कृष्णा के संस्मरण

१

एकादशी का दिन था। बैलगाड़ी में बैठकर हम माहुली चले। सतारा से माहुली काफ़ी दूर है। रास्ते में दाहिनी तरफ़ श्रीसाहूजी महाराज के स्वामि-भक्त कुत्ते की समाधि पड़ती है। हमारी ही तरह और भी बहुत-से लोग माहुली की ओर गाड़ियाँ दौड़ाते हुए जा रहे थे। हम लोग नदी के किनारे पहुँच गये। इस पार से उस पार तक वहाँ लोहे की एक जंजीर ऊँचे खम्भों से बँधी हुई थी और उसी के सहारे एक नाव भी लटक रही थी जो मेरी बाल-आँखों को बड़ी सुन्दर मालूम होती थी।

किनारे के कङ्कर कैसे चिकने, काले और ठंडे-ठंडे थे! एक को हाथ में लेता तो झट दूसरे पर नज़र पड़ती। वह उससे भी ज्यादा अच्छा लगता। इतने में तीसरे भीगे हुए कङ्कर पर कत्थई रंग को लकीरें दिखायी पड़तीं और दिल उसे ही उठाने को ललच उठता। उस दिन, मुझे पहली ही बार कृष्णा का दर्शन हुआ। पहले-पहल कृष्णा ने ही मुझे पहचाना। मैं तो इतना बड़ा हुआ ही न था कि उसे पहचान लेता। बालक के माता को पहचानने से पहले ही माता उसे अपना लेती है। नंगे होकर हम खूब नहाये, खेले-कूदे, पानी उछाला और नाव पर चढ़कर कृष्णा मैया की गोद में खूब छलाँगें मारीं। उस दिन हमने कृष्णा में इतना जलविहार किया कि कड़ाके की भूख लग आयी।

जैसे नदी का यह मेरा पहला दर्शन था, वैसे ही नहाने के बाद नमकीन मूँगफली के नाश्ते का स्वाद भी मेरे लिए पहला

था। उस यात्रा में मोरपंखों की टोपी पहने हुए 'वासुदेव' भी हमारे पास भीख माँगने आये थे। उस रोज़ पहली ही बार हमने उनका मधुर भजन सुना। कृष्णा मैया के मन्दिर में थोड़ा-सा आराम करने के बाद हम घर लौटे।

सह्याद्रि के जंगलों में, महाबलेश्वर के पास से निकलकर सतारा तक दौड़ लगाने में कृष्णा को बहुत देर नहीं लगती। पर इतने में ही वेण्या नदी कृष्णा बहिन से मिलने आ जाती है। इन दोनों के संगम के कारण ही माहुली को माहात्म्य मिला है। इस संगम को देखकर पैंतीस बरस तक मेरे हृदय पर इस दृश्य की कुछ ऐसी छाप पड़ी रही, मानों दो लड़कियाँ एक दूसरी के कंधे पर हाथ रखकर खेलने निकली हों।

कृष्णा का कुटुम्ब-कबीला काफ़ी बड़ा है। कई छोटी-मोटी आसपास की नदियाँ दौड़-दौड़कर इसके गले मिलती हैं। गोदावरी के साथ-साथ कृष्णा को भी 'महाराष्ट्र-माता' कह सकते हैं। जिस ज़माने में आज की मराठी भाषा बोली नहीं जाती थी, तब का सारा महाराष्ट्र कृष्णा के घेरे के अन्दर था।

२

जब नरसोबा की वाड़ी को जाते समय नाव पर गाड़ी चढ़ाकर हमने कृष्णा को पार किया, तब उसका दूसरी बार दर्शन हुआ। यहाँ एक ओर ऊँची कगार, और दूसरी ओर दूर तक फैली हुई कृष्णा की काली और चिकनी कछार, और उसमें उगे हुए बैंगन, ककड़ी, तरबूज़ और खरबूजे के अमृतरस भरे हुए हरे-हरे खेत। जिसने एकाध बार भी कृष्णा के किनारे के ये बैंगन खा लिये, वह स्वर्ग में भी उनकी इच्छा करेगा। दो-दो महीने तक लगातार बैंगन खाने पर भी तृप्ति नहीं होती, अरुचि तो हो ही क्यों ?

३

मैंने पहली ही बार, साँगली के पास, कृष्णा के तट पर महाराष्ट्र का राजवैभव देखा। सुन्दर-से-सुन्दर आलीशान घाट, चमकते हुए सुन्दर कलशे, भर भरकर पानी ले जाती हुई महाराष्ट्र-ललनायें, पानी में कूद-कूदकर किनारे पर खड़े हुए लोगों को भिगोने की उमंग दिखलानेवाले जोशीले अखाड़ेबाज़, घण्टों के तालबद्ध स्वर से अपने आने की ख़बर देनेवाले पहाड़ जैसे भीमकाय हाथी और अपनी कर्र्र्र् की एकसी आवाज़ करते हुए रस पीने का न्योता देनेवाले ईख के कोल्हू, कृष्णाबाई का यह तीसरा दर्शन था।

तैरना मुझे अच्छी तरह नहीं आता था। फिर भी घड़े को पानी में औंधा डालकर, उसके सहारे बह जाने के लिए मैं एक बार नदी में उतर ही पड़ा; लेकिन एक जगह कीचड़ में ऐसा फँस गया कि एक पैर निकालता, तो दूसरा और भी अन्दर धँस जाता। और कीचड़ भी कैसा, एकदम स्याह और मक्खन जैसा मुलायम! मैंने सोचा, जंगम न रहकर अब अपने राम उलटे पेड़ की तरह यहीं स्थावर हो जायँगे। उस दिन की घबराहट तो अब भी नहीं भूला हूँ।

४

चिंचली स्टेशन पर पीने के लिए हमें हमेशा कृष्णा का ही पानी मिलता था। वहाँ हमारी पहचान के एक स्टेशनमास्टर थे। हम प्यासे हों या न हों, पिताजी हम सबको भक्तिपूर्वक कृष्णा का जल पीने को कहते। कृष्णा महाराष्ट्र की आराध्य-देवी है। उसकी एक बूँद भी पेट में जाने से हम पवित्र हो जाते हैं। जिसके पेट में कृष्णा के पानी की एक बँद भी पहुँच

चुकी है, वह अपने महाराष्ट्रीपन को कभी भूल नहीं सकता। श्री समर्थ रामदास और शिवाजी महाराज, शाहूजी और बाजीराव, सरदार घोरपडे और पटवर्धन, नाना फड़नवीस और रामशास्त्री प्रभुणे, थोड़े में कहें तो महाराष्ट्र की साधुता और वीरता, महाराष्ट्र की न्यायनिष्ठा और राजनीतिज्ञता, धर्म और सदाचार, देशसेवा और विद्या-सेवा, स्वतंत्रता और उदारता, ये सब गुण कृष्णा के परिवार में ही परवरिश पाकर फले-फूले हैं। सन्तधाम देहू और आलंदी का पानी कृष्णा में ही मिलता है। भक्तिपुरी पंढरपुर की चंद्रभागा भीमा बनकर कृष्णा में ही मिलती है। 'गंगा का स्नान और तुंगा का पान' इस कहावत में जिसका गौरव माना गया है, वह तुंगभद्रा कर्णाटक के प्राचीन साम्राज्य के वैभव की याद करती हुई कृष्णा ही में लीन होती है। सच कहें, तो महाराष्ट्र, कर्णाटक और आंध्र, इन तीनों प्रदेशों की एकता साधने के लिए ही कृष्णा बहती है, इन तीनों प्रान्तों ने कृष्णा का दूध पिया है। उसमें प्रांतीयता की भावना है ही नहीं।

५

कॉलेज के दिन। पूना से बड़ी-बड़ी आशायें लेकर बड़े भाई से मिलने घर गया, लेकिन मेरे पहुँचने से पहले ही वह इस दुनिया को छोड़ चुके थे। मेरी किस्मत में कृष्णा के पवित्र जल में उनके फूल (हड्डियाँ) सिराना ही बदा था। बेलगाँव से मैं कूडची गया। शाम का वक्त था। रेल के पुल के नीचे कृष्णा की पूजा की। बड़े भाई के फूल कृष्णा को अर्पण किये। नहाया और पलथी मारकर जीवन-मरण के ऊपर विचार करने लगा। कृष्णा के पानी में कितने महाराष्ट्र वीरों और महाराष्ट्र के शत्रुओं का खून मिला होगा! चौमासे की मस्ती में अल्हड़ कृष्णा ने कितने किसानों

और उनके जानवरों को जल-समाधि दे दी होगी ! मगर कृष्णा को इससे क्या ? मदोन्मत्त हाथी इसके जल में विहार करें और विरक्त साधु इसके किनारे तपस्या करें, कृष्णा के लिए दोनों समान हैं। मेरे भाई की हड्डियों और कंकर बनी हुई पहाड़ की हड्डियों के बीच कृष्णा के मन में क्या फ़र्क़ है ? माहुली में अपने कंधे पर मुझे खड़ा कर पानी में कूदने के लिए मुझमें जोश भरने-वाले बड़े भाई की अस्थियाँ मुझी को अपने हाथों कृष्णा के जल में सिरानी पड़ीं। जीवन की यह कैसी अगम्य गति है, कैसी विचित्र लीला है ! !

६

कृष्णा के गर्भ में मेरा एक दूसरा भाई भी सोया हुआ है ! ब्रह्मचारी अनन्त बुवा मढेरकर हृदय की भावना से मेरे सगे छोटे भाई थे और देश-सेवा के व्रत में मेरे बड़े भाई के समान पूज्य। उन्होंने स्वदेशी, राष्ट्रीयशिक्षा और गो-सेवा का काम करते-करते शरीर छोड़ा। मेरे साथ उन्होंने गंगोत्री और अमरनाथ की यात्रा की थी; मगर कृष्णा के किनारे आकर ही वह अमर हुए। भक्ति के आवेश में वह अपनी सारी सुध-बुध भूल जाते, और चलते-चलते ठोकर खा जाते, इसका हिमालय की यात्रा में मुझे कई बार अनुभव हुआ था। मैं बार-बार उन्हें टोकता भी; पर वह इसका ज़रा भी ख़याल न करते। वह तो श्री समर्थ रामदास की प्रासादिक वाणी की धुन में ही मस्त रहते थे। कृष्णा को भी इन्हें टोकने की सूझी होगी। बेचारे अनन्त भाई मन्दिर की प्रदक्षिणा करते-करते ऊपर से कृष्णा के दह में गिर पड़े और परलोक सिधार गये। जिस वक्त वाई के पथरीले पाट पर से बहती हुई गंगा को स्मरण करता हूँ और हर चौमासे में कृष्णा में सिर डुबोकर स्नान करने-वाले देवमंदिर के शिखरों का दर्शन करता हूँ, तब कृष्णा के पास

'मेरा भी एक भाई हमेशा के लिए पहुँच गया है', इसकी याद आये बिना नहीं रहती। उस भाई की तपोनिष्ठ, किन्तु प्रेम-स्निग्ध मूर्ति का दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

७

सन् १९२१ का वह साल! हिन्दुस्तान ने एक ही बरस में संपूर्ण स्वराज्य ले लेने का बीड़ा उठा लिया है। हिंदू-मुसलमान एक हो गये हैं। तैंतीस करोड़ देवताओं के समान भारतवासी भी करोड़ों की संख्या में विचार करने लगे हैं। स्वराज-ऋषि लोकमान्य तिलक की स्मृति हमेशा ताज़ा रखने के लिए 'तिलक-स्वराज फ़ंड' में एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना है। राष्ट्रीय महासभा के झंडे के नीचे काम करनेवाले सदस्य भी एक करोड़ बनाने हैं। और श्रीकृष्ण के सुदर्शन-चक्र के समान, द्रौपदी के पट-वर्धन चर्खे भी इस धर्मभूमि में उतने ही चलवा देने हैं। भारत-माता के पुत्र इस काम के लिए बेजवाड़े में इकट्ठे हुए हैं। श्री अब्बास साहब, श्री पुणताँबेकर, आचार्य गिडवानी और मैं, हम सब एक साथ बेजवाड़े पहुँच गये हैं। ऐसे मंगलमय अवसर पर श्रीकृष्णाम्बिका का विराट दर्शन करने का सौभाग्य मिला। जिस कृष्णा के किनारे वाई में बैठकर संध्या-वंदन किया था और न्यायनिष्ठ रामशास्त्री और राजकाज-पटु नाना फड़नवीस की बातें की थीं, उसी नन्हीं-सी कृष्णा को यहाँ इतनी बड़ी होते देखकर पहले तो विश्वास ही न हुआ; कहाँ माहुली की वह छोटी-सी लोहे की जंजीर, और कहाँ यूरोप-अमेरिका को जोड़नेवाले केबुल जैसे यहाँ के रस्से! हजारों-लाखों लोग यहाँ नहाने आते हैं। स्थूलकाय आंध्र-भाइयों में आज भारतवर्ष के तमाम भाई मिल गये हैं। जहाँ-तहाँ राष्ट्रीय हिन्दी का विमल वाणी-प्रवाह सुनाई पड़ रहा है। जिस तरह कृष्णा से वेण्या, वारणा, कोयना, भीमा और

तुंगभद्रा आकर मिलती हैं, उसी तरह गाँव-गाँव के लोग भी ठट्ठ-के-ठट्ठ यहाँ इकट्ठे हुए हैं। ऐसे समय में नित्य कृष्णा में स्नान करने का हमें लाभ मिलता। जिस कृष्णा ने जन्म-काल का दूध दिया, उसी कृष्णा ने स्वराज्याकांक्षी भारत-राष्ट्र का गौरवशाली दर्शन कराया। जय कृष्णे! तेरी जय हो, हिन्दुस्तान एक हो!! स्वतंत्र हो!!!

: ३ :

गंगामैया

गंगा कुछ भी न करती, केवल देवव्रत भीष्म को ही जन्म देती, तो भी आज वह आर्य-जाति की माता ही कहलाती। भीष्म की वज्र-जैसी टेक, उनकी निःस्पृहता, उनका ब्रह्मचर्य और तत्त्वज्ञान सदा के लिए आर्य-जाति का एक आदरणीय आदर्श बन गया है। हम गंगा को ऐसे महापुरुष की माता के रूप में ही पहचानते हैं।

नदी को अगर कोई उपमा शोभती है, तो वह माता की ही। नदी के तीर पर रहने से अकाल का डर तो रहता ही नहीं। जब मेघराज हमें धोखा दे देते हैं, तब नदी माता ही हमारी फ़सल पकाती है। नदी का तट शुद्ध और शीतल हवा का होता है उसके किनारे-किनारे घूमने-फिरने जायँ तो प्रकृति की मातृ-वत्सलता के अखंड प्रवाह का दर्शन होता है। नदी बड़ी हो, और उसका बहाव धीर-गंभीर हो, तब तो उसके तट पर रहनेवालों की शानशौक़त और खुशहाली उस नदी पर ही निर्भर रहती है। सचमुच नदी

जन-समाज की माता है। जब हम किसी नदी के किनारे पर आबाद शहर की गलियों में घूम रहे हों और एकाध कोने से कहीं नदी की झलक देखने को मिल जाय, उस समय हमें कितना आनन्द होता है! कहाँ शहर का गन्दा वातावरण और कहाँ नदी का आनन्ददायी दर्शन! उसी क्षण दोनों का अन्तर हमें मालूम हो जाता है। नदी ईश्वर नहीं है, पर ईश्वर का स्मरण करानेवाली देवी ज़रूर है। अगर गुरु को नमन करना उचित है, तो नदी की भी वन्दना करना न्याय्य है।

यह तो हुई एक सामान्य नदी की बात। गंगामैया तो आर्य-जाति की माता है। आर्यों के बड़े-बड़े साम्राज्य इसी के तट पर स्थापित हुए हैं। कुरु-पांचाल देश का अंग-बंग आदि देशों के साथ गंगा ने ही गठबंधन किया। आज भी हिन्दुस्तान की अधिकांश आबादी गंगा के ही तट पर है।

हम जब गंगाजी का दर्शन करते हैं, तब हरे-हरे लहलहाते खेत ही हमारे ध्यान में नहीं आते; उनके साथ व्यास-वाल्मीकि के अमर काव्य, बुद्ध-महावीर के विहार, अशोक-समुद्रगुप्त या हर्ष-सरीखे बड़े-बड़े सम्राटों के पराक्रम और तुलसी और कबीर जैसे संत-महात्माओं की साखियाँ और भजन, इन सबका भी स्मरण हो आता है। गंगा का दर्शन तो शैत्य-पावनत्व का प्रत्यक्ष दर्शन है।

लेकिन गंगा का दर्शन कुछ एक ही तरह का नहीं है। गंगोत्री के पास बर्फ़ से ढके हुए प्रदेशों में इसका क्रीड़ासक्त कन्यारूप, उत्तर काशी की ओर चीड़-देवदार के काव्यमय प्रदेश में मुग्धारूप, देवप्रयाग के पहाड़ी और सँकरे प्रदेश में चमकीली अलकनन्दा के साथ इसकी अठखेलियाँ, लक्ष्मण झूले की विकराल दंष्ट्रा में से छूटने के बाद हरद्वार के समीप कई धाराओं में

विभक्त होकर इसका स्वच्छंद विहार, कानपुर से सटकर जाता हुआ इसका इतिहास-प्रसिद्ध प्रवाह, तीर्थराज प्रयाग के विशाल पाट के ऊपर इसका यमुना के साथ लोक-पावन त्रिवेणी-संगम—हरेक की शोभा कुछ निराली ही है। एक दृश्य को देखकर दूसरे की कल्पना ही नहीं हो सकती। हरेक का सौन्दर्य जुदा, हरेक का भाव जुदा, हरेक का वातावरण जुदा और हरेक का माहात्म्य भी जुदा है।

प्रयाग से गंगा कुछ निराला ही रूप धारण कर लेती है। गंगोत्री से लेकर प्रयाग तक गंगा उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भी एकरूप मानी जाती है। किन्तु प्रयाग के पास इसमें यमुना आकर मिलती है। यमुना का पाट तो पहले से ही दोहरा है। वह खेलती है, कूदती है; पर क्रीड़ासक्त नहीं दीखती। और जब गंगा शकुन्तला जैसी तपस्वी कन्या दीखती है, तब काली यमुना द्रौपदी जैसी मानिनी राजकन्या दीख पड़ती है। जब हम शर्मिष्ठा और देवयानी की कथा सुनते हैं, उस समय प्रयाग के समीप गंगा और यमुना का बड़ी कठिनाई से मिलता हुआ शुक्ल-कृष्ण प्रवाह याद आता है।

भारतवर्ष में अनगिनती नदियाँ हैं, और उनके संगम भी अनेक हैं। हमारे पूर्वजों ने इन सभी संगमों में गंगा-यमुना का यह प्रेम-सम्मिलन सबसे ज़्यादा पसंद किया, और इसीलिए उसका 'प्रयागराज' जैसा गौरवपूर्ण नाम रक्खा। भारत में मुसलमानों के आने के बाद जिस प्रकार उसके इतिहास का रूप बदला, उसी प्रकार दिल्ली, आगरा और मथुरा-वृन्दावन के समीप से आते हुए यमुना के प्रवाह के कारण गंगा का अपना रूप भी बिलकुल बदल गया है।

प्रयाग के बाद गंगा एक कुलवधू की तरह गंभीर और

सौभाग्यवती दीख पड़ती है। इसके बाद गंगा में बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती जाती हैं। यमुना का जल मथुरा-वृन्दावन से श्रीकृष्ण के संस्मरण अर्पण करता है। अयोध्या में होकर आनेवाली सरयू आदर्श नरपति रामचन्द्र के प्रतापी, किन्तु करुण जीवन की स्मृतियाँ लाती है। दक्षिण की ओर से आनेवाली चम्बल नदी राजा रंतिदेव के यज्ञ-याग की बातें सुनाती है, जबकि महान् कोलाहल करता हुआ शोणभद्र नद गज और ग्राह के भीषण युद्ध की झाँकी कराता है। इस भाँति हृष्ट-पुष्ट बनी हुई गंगा पाटलिपुत्र (पटना) के पास मगध-साम्राज्य के समान विस्तीर्ण हो जाती है। फिर भी गंडकी अपना अमूल्य कर-भार लाते हुए हिच-किचायी नहीं। जनक और अशोक की, बुद्ध और महावीर की प्राचीन भूमि से निकलकर आगे बढ़ती हुई गंगा मानों विचार में पड़ जाती है कि अब कहाँ जाना चाहिए। जब इतनी प्रचण्ड जल-राशि अपने अमोघ वेग से पूरब की तरफ़ बह रही हो, तब उसे दक्षिण की ओर मोड़ देना क्या कोई सरल बात है? फिर भी वह उस ओर मुड़ जाती है। जिस तरह दो सम्राट् अथवा दो जगद्गुरु एकाएक दूसरे से नहीं मिलते, उसी तरह गंगा और ब्रह्मपुत्रा का हाल है। ब्रह्मपुत्रा हिमालय के उस ओर का जल समेटकर आसाम में से होती हुई पश्चिम की तरफ़ आती है और गंगा इस ओर से पूरब की ओर जाती है। दोनों का मिलान आमने-सामने कैसे हो सकता है? कौन किसे पहले झुके? कौन किसे पहले रास्ता दे? अन्त में दोनों ने निश्चय किया कि दोनों को दाक्षिण्य—एक दूसरे को प्रसन्न करने की उदारता—का विचार करके सरित्पति—सागर—के दर्शन के लिए जाना चाहिए और भक्ति-नम्र होकर जाते-जाते, जहाँ भी संभव हो वहाँ, मार्ग में एक दूसरे से मिल लेना चाहिए।

इस प्रकार गोलंदी के पास जब गंगा और ब्रह्मपुत्रा का विशाल जल आकर मिलता है, तब यह शंका होने लगती है कि क्या समुद्र इससे भिन्न ही तरह का होता होगा ? जिस प्रकार विजय पाने के बाद खड़ी हुई सेना अव्यवस्थित हो जाती है और विजयी वीर जहाँ-तहाँ घूमते-फिरते हैं, उसी तरह संगम के बाद इन नदियों की भी वही दशा होती है। ये अनेक मुखों द्वारा सागर में जाकर मिल जाती हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्रा एक होकर पद्मा का नाम धारण करती हैं। यही पद्मा आगे जाकर मेघना के नाम से पुकारी जाती है।

यह अनेकमुखी गंगा कहाँ जा रही है ? सुन्दरवन में बेंत के झुण्ड उगाने के लिए या सगरपुत्रों की वासना को तृप्त कर, उनका उद्धार करने के लिये ? आज जाकर आप देखें तो उस प्राचीन काल की कोई भी बात यहाँ रही नहीं। जहाँ देखो वहाँ सन की बोरियाँ बनानेवाली मिलें, और इसी तरह के बदसूरत कल-कारखाने खड़े हुए हैं। जहाँ से हिन्दुस्तानी कारीगरी की असंख्य वस्तुएँ हिन्दुस्तान के जहाज़ों में लद-लदकर लंका और जावाद्वीप तक जाती थीं, वहीं से अब विलायती और जापानी आगबोटें विदेशी कारखानों में बने हुए कूड़े-कचरे जैसे माल से हिन्दुस्तान के बाज़ारों को पाट देने के लिए आती हुई दिखायी देती हैं। गंगामैया पहले ही की तरह हमें समृद्धि प्रदान करती है ; लेकिन हमारे निर्बल हाथ उस समृद्धि को सँभाल नहीं सकते ! गंगा-मैया ! यह दुःखद दृश्य देखना तेरे भाग्य में कब तक बदा है ?

: ४ :

यमुना रानी

हिमालय तो सचमुच भव्यता का भण्डार है। जहाँ-तहाँ अपनी भव्यता बिखेरकर भव्यता की अभव्यता को कम करते रहना ही उसका व्यवसाय है। फिर भी इस हिमालय में एक ऐसी भी जगह है, जिसकी ऊर्जस्विता हिमालयवासियों का ध्यान अपनी ओर खींचती रहती है। यमराज की बहिन का यह उद्‌गम स्थान है।

ऊँचाई से बर्फ़ पिघल-पिघलकर एक बड़ा जल-प्रपात-सा गिरता है। आसपास गगन-चुम्बित ही नहीं, बल्कि गगन-भेदी पुराने बड़े-बड़े वृक्ष आड़े गिरकर गल जाते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ यमदूतों की तरह रखवाली करने के लिए खड़े हैं। घड़ी भर में पानी जमकर बर्फ़ बन जाता है और थोड़ी ही देर में पिघलकर उसका बर्फ़ जैसा ठण्डा पानी बहने लगता है। ऐसे स्थान में, ज़मीन के अन्दर से, एक अजब ढंग से, उबलता हुआ पानी उछलता रहता है और ज़मीन के भीतर से ऐसी आवाज़ निकलती रहती है, मानों किसी एंजिन में से बड़े ज़ोर से भाप निकल रही हो। और इन झरनों में से सिर से भी ऊँची उड़ती हुई गरम पानी की बूँदें इतनी सर्दी में भी आदमी को झुलसा देती हैं! ऐसे ही लोक-चमत्कारी स्थान में 'असित' नाम के एक ऋषि ने यमुना का मूल-स्थान खोज निकाला। इस स्थान में शुद्ध जल में नहाना तो असम्भव-सा है। ठण्डे पानी में नहाने से तो हमेशा के लिए ठण्डा हो जाना पड़ेगा और अगर गरम जल में नहायें, तो वहीं-के-वहीं आलू की तरह उबल जायँगे। इसीलिए वहाँ ठंडे और

गरम पानी के चश्मे—शीतोष्ण मिश्रित जल के कुण्ड—तैयार किये हैं। एक झरने के ऊपर एक गुफा है। इसमें लकड़ी के पटिये बिछाकर सो सकते हैं; लेकिन रातभर करवट बदलते रहना पड़ेगा। ऊपर की ठंड और नीचे की गरमी, दोनों ही असह्य हैं !

दोनों बहिनों में, गंगा से यमुना बड़ी है, प्रौढ़ है, सयानी और गंभीर है। वह कृष्ण-भगिनी द्रौपदी जैसी कृष्णवर्णा और वैसी ही मानिनी भी है। गंगा तो मानो बेचारी मुग्धा शकुन्तला ही ठहरी; तो भी देवाधिदेव ने उसे अंगीकार किया और इसीलिए यमुना ने अपना बड़प्पन छोड़कर गंगा को ही अपनी सरपरस्ती सौंप दी। ये दोनों बहिनें आपस में मिलने के लिए बड़ी उतावली दीख पड़ती हैं। हिमालय में, एक जगह पर तो दोनों बहुत ही नज़दीक आ जाती हैं, पर ईर्ष्यालु दंडाल पहाड़ बीच में विघ्नसंतोषी की तरह आड़े आकर उनका सम्मिलन नहीं होने देता। एक कवि का-सा दिल रखनेवाले ऋषि रहते तो थे यमुना के तीर पर; मगर रोज़ नहाते थे गंगाजी में, और फिर भोजन के लिये वापस अपनी यमुना के ही घर आ जाते थे। जब वह बूढ़े हो गये—और आख़िर ऋषि भी बूढ़े हो ही जाते हैं—तो उनके थके हुए चरणों पर तरस खाकर गंगा ने अपना प्रतिनिधि एक छोटा-सा झरना यमुना के तीर ऋषि के आश्रम में भेज दिया। आज भी वहाँ यह नन्हा-सा सफ़ेद झरना उसी बूढ़े ऋषि की याद में बह रहा है।

देहरादून के पास भी हमें यह आशा होती है कि ये दोनों नदियाँ आपस में एक दूसरे से मिलेंगी। मगर नहीं, अपनी शीतलता और पवित्रता से अन्तर्वेदी के समूचे प्रदेश को पवित्र करने का अपना फ़र्ज़ पूरा करने से पहले, उन्हें एक दूसरे से मिलकर फ़ुरसत की बातें करने की सूझती ही कैसे? जब गंगा उत्तर काशी,

टेहरी, श्रीनगर, हरद्वार, कन्नौज, ब्रह्मावर्त, कानपुर आदि प्राचीन और इतिहास-प्रसिद्ध स्थानों को अपना दूध पिलाती हुई दौड़ती है, उसी समय यमुना कुरुक्षेत्र और पानीपत के हत्यारे मैदान को देखती हुई हिन्दुस्तान की राजधानी के पास आ पहुँचती है। यमुना के पानी में साम्राज्य की शक्ति होनी चाहिए। इसके स्मरण-संग्रहालय में पाण्डवों से लेकर मुग़ल-साम्राज्य तक का और ग़दर के ज़माने से लेकर स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या तक का, सारा इतिहास भरा पड़ा है। दिल्ली से आगरे तक, ऐसा मालूम होता है मानो बाबर के ख़ानदान के लोग ही हमारे साथ बातें करना चाहते हैं। दोनों शहरों के क़िले सल्तनत की रक्षा के लिए नहीं; बल्कि यमुना की शोभा निहारने के लिए ही मानों बनाये गये हैं। मुग़ल-सल्तनत के नगाड़े बजने तो बन्द हो गये, लेकिन गोकुल-वृन्दावन की मोहिनी बाँसुरी तो अब भी बज रही है।

मथुरा-वृन्दावन की शोभा कुछ निराली ही है। इधर का प्रदेश जितना रमणीय है उतना ही सम्पन्न है। हरियाने की गायें अपने मीठे और पुष्टिकर दूध के लिए हिन्दुस्तान भर में मशहूर हैं। यशोदा मैया और ग्वालों के राजा नंदबाबा ने स्वयं इस स्थान को पसंद किया था, इस बात को तो मानों यहाँ की भूमि भूल ही नहीं सकती। मथुरा-वृन्दावन—बालकृष्ण की क्रीड़ास्थली, वीर श्रीकृष्ण की विक्रमभूमि! द्वारकावास का प्रसंग छोड़ दिया जाय, तो श्रीकृष्ण के जीवन के साथ अधिक-से-अधिक सहयोग कालिन्दी रानी ने ही किया है। जिस यमुना ने कालियमर्दन देखा, उसी यमुना ने कंस का शिरच्छेद होते देखा। जिस यमुना ने हस्तिनापुर के दरबार में श्रीकृष्ण की दूतवाणी सुनी, उसी ने कुरुक्षेत्र में रण-कुशल श्रीकृष्ण की योगमूर्ति चलती-फिरती देखी। जिस यमुना ने वृन्दावन की प्रेम-बाँसुरी के मधुर आलाप के

साथ अपना कल कलनाद मिलाया, उसी ने भीषण कुरुक्षेत्र में रोमहर्षण गीतावाणी को प्रतिध्वनित किया—दोहराया। यमराज की बहिन का भाईपना तो श्रीकृष्ण को ही सोह सकता है।

जिसने भारत के क्षत्रिय-कुल का कई बार संहार देखा है, उस यमुना के लिए पारिजात के फूल से कोमल ताजमहल का अवसान कितना मर्मभेदी रहा होगा? फिर भी उसने प्रेम-सम्राट् शाहजहाँ के जमे हुए आँसुओं को प्रतिबिम्बित करना स्वीकार कर लिया है।

राजा रन्तिदेव के कारण भारतीय काल से प्रख्यात बनी वैदिक-नदी चर्मण्वती से अपना कर लेकर यमुना ज्यों ही आगे बढ़ती है, उससे मध्ययुग के इतिहास की झाँकी करानेवाली नन्हीं-सी सिन्धु नदी आकर मिलती है।

अब यमुना उतावली हो उठती है। वह सोचती है, इतने दिन हो गये और बहिन गंगा के दर्शन नहीं हुए। इतनी बातें सुनाने को हो गयी हैं कि पेट में समाती नहीं और पूछने के लिए असंख्य सवाल भी इकट्ठे हो गये हैं। कानपुर और कालपी बहुत दूर नहीं हैं। यहाँ गंगा की खबर पाकर और इस खुशी में अपना मुँह मिश्री से मीठा करके यमुना दौड़ी और तीर्थराज प्रयाग में गंगा के गले से लिपट गई। कैसा दोनों का प्रेम-उन्माद है! मिलने पर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि हम मिली हैं। भारत के कोने-कोने से साधु-संत इस प्रेम-संगम को देखने के लिए इकट्ठे हुए हैं। पर इन दोनों बहिनों को इस बात का कोई भय नहीं। इस बात की भी इन्हें परवा नहीं कि आँगन में अक्षय-वट खड़ा है, और बूढ़े अकबर को, जो छावनी डाले पड़ा है, पूछने की फ़ुर्सत ही किसे है? और अशोक की लाट ही लाकर आप वहाँ खड़ी करें, तो क्या आप सोचते हैं कि ये बहिनें उसकी ओर नज़र उठाकर देखेंगी?

प्रेम का प्रवाह अखंड बहता रहता है, और उसके साथ कवि-सम्राट् कालिदास की सरस्वती भी अखंड बह रही है !

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादंबसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
अन्यत्र कालागरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चांद्रमसी तमोभिश्छाया विलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्मनभः प्रदेशा ॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्यांगि ! विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥

[ऐ निर्दोष अंगवाली सीते ! देखो, इस गंगा के प्रवाह में यमुना की तरंगें धँसकर प्रवाह को खंडित कर रही हैं ! यह कैसा अनूठा दृश्य है ! कहीं ऐसा दीखता है, मानों मोतियों की माला में पिराये हुए इन्द्रनीलमणि मोती की आभा को धुँधला कर रहे हों। कहीं ऐसा लगता है, मानों सफ़ेद कमल के हार में नीले कमल गूँथ दिये हों। कहीं मानों, मानसरोवर को जाते हुए श्वेतहंसों के साथ कृष्णवर्ण कादंब पक्षी उड़ रहे हों। कहीं मानों सफ़ेद चंदन से लीपी हुई भूमि पर कालागरु की पत्र-रचना की गई हो। कहीं मानों चन्द्र की प्रभा के साथ छाया में लीन अंधकार की क्रीड़ा हो रही हो, कहीं शरद् ऋतु के मेघ के पीछे से छिद्र में से आकाश की नीलिमा ज़रा-ज़रा दिख रही हो, और कहीं, ऐसा दीखता है, मानों महादेवजी के भस्म-भूषित शरीर पर काले-काले साँपों के आभूषण धारण करा दिये हों।]

कैसा सुन्दर दृश्य है ! ऊपर पुष्पक-विमान में मेघश्याम रामचन्द्र और धवलशीला सीता चौदह वर्ष के वियोग के बाद अयोध्या में पहुँचने के लिए उतावले हो रहे हैं, और नीचे इन्दीवरश्यामा

कालिंदी और सुधासलिला जाह्नवी एक-दूसरे का प्रगाढ़ आलिंगन छोड़े बिना सागर में अपने नाम-रूप को विसर्जन कर विलीन होने के लिए दौड़ी जा रही हैं।

इस दृश्य को देखकर स्वर्ग से फूलों की वर्षा अवश्य हुई होगी और पृथिवी पर कवियों की प्रतिभा-सृष्टि के फुहारे उड़े होंगे।

: ५ :

नदी पर नहर

सावन की पूनो, याने जनेऊ बदलने का दिन; और ब्राह्मणत्व को भूल जायँ तो यह बहिनों की राखी का दिन है। इस दिन हम रुड़की पहुँचे। खिलाड़ी वेणीप्रसाद बात की बात में मेरे साथ हिल गया और कहने लगा—'अजी काकाजी, आज तो आपके ही हाथ से हम जनेऊ लेंगे। यहाँ के ब्राह्मण वेदमंत्रों को ठीक-ठीक नहीं बोलते। आप महाराष्ट्र हैं। आप ही हमें जनेऊ दीजियेगा।' वेणीप्रसाद के मामा बड़े भक्त थे। उनके साथ जनेऊ के बारे में बातें होने लगीं। उत्तर भारत के ब्राह्मण चाहते हैं कि तीनों द्विजवर्ण बराबर जनेऊ पहिनें और संध्या वग़ैरः नित्यकर्म किया करें, मगर इस ओर लोगों में बड़ी अनास्था है। जब दक्षिण में ब्राह्मणेतर लोग जनेऊ पहनना चाहते हैं, तब महाराष्ट्र के ब्राह्मण "कलौ आद्यन्तयोः स्थितिः" इस वचन के अनुसार यह बेहूदी जिद पकड़ बैठते हैं कि बीच के दो वर्ण—क्षत्रिय-वैश्य—हैं ही नहीं। (सौभाग्य से अब यह हालत नहीं रही) जिनको जनेऊ पहनने का अधिकार है, उनमें उसके पहनने की

दिलचस्पी नहीं और जो धींगाधींगी करके भी जनेऊ पहनने का हक़ हासिल कर लेना चाहते हैं, उन्हें अपना द्विजत्व साबित करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह चर्चा सुनकर वेणी को ऐसा लगा कि उसे आज जनेऊ मिलनेवाला नहीं है। उसने दलील पेश की, 'कलजुग में क्या नहीं हो सकता? अगर नदी पर नदी सवार हो सकती है, तो एक महाराष्ट्र ब्राह्मण भी हमें जनेऊ दे सकता है।'

यहाँ से हमारी बातचीत का विषय बदला, और कलजुग के भगीरथों की बहादुरी का नमूना गंगा की नहर के बारे में बातें छिड़ गईं। दोपहर में, हम मनुष्य की निर्माण-कला का यह असाधारण नमूना देखने के लिए चल दिये। गंगा की नहर रुड़की शहर के पास से निकली है। लड़के इस नहर में मछलियों की तरह 'लुका-छिपी' खेल रहे थे। नहर के किनारे-किनारे हम उस मशहूर पुल तक चले गये। सचमुच वह एक मनोहर दृश्य—नज़ारा—था। पुल के नीचे एक ग़रीब ब्राह्मणी की तरह, सोलाना नदी बह रही थी, और उसके ऊपर गंगा की नहर अपने चौड़े पाट को ज़रा भी सिकोड़े बिना पुल पर से होकर सरपट भागी जा रही थी। उस पुल पर पानी का इतना भार था, मानो अभी उसकी दीवार टूट जायगी और दोनों ओर से हाथी की भूल की तरह मोटी धारा बहने लगेगी। पुल की दीवार के ऊपर खड़े होकर नहर के बहाव की तरफ़ झाँकने से दिमाग़ चक्कर खाने लगता है। दुखी मनुष्य के मगज़ में जिस तरह उद्वेग के नये-नये उफान उठते हैं, उसी तरह नहर के पानी में भी उभाड़ उठ रहे थे। लेकिन जिस प्रकार ससुराल में आई हुई नयी बहू अपने मन की सारी उमंगों को दबाये रहती है, उसी तरह गंगा नदी की यह पराधीन पुत्री भी अपने तमाम उफानों को दबाये रखती है।

पहले-पहल दर्शन करते समय इसके विस्तार को देखकर यह ऐसी मालूम होती है मानो कोई घमंडिन सेठानी हो। पर बहुत पास से देखें, तो अमीरी के नीचे पराधीनता का दुःख उसके चेहरे पर साफ़ झलकता दिखाई पड़ता है।

निम्नगा सोलाना का क्षीण, मगर स्वतंत्र प्रवाह ऊपर से देखने पर बड़ा ही लुभावना लगता है। दिल में सिर्फ़ इतना ही अखरता है कि नहर के दोनों ओर की दीवारों में परीवाह (पनाले) के रूप में कुछ छेद बनाये गये थे, जिनमें से नहर का थोड़ा-थोड़ा पानी इस तरह सोलाना में गिरता था, मानों वह उस पर कोई भारी अहसान कर रहा हो।

पुल से हम नीचे उतर पड़े, और जाकर सोलाना के किनारे बैठ गये। सोलाना इतनी मानिनी न थी कि वह इस उपकार को अस्वीकार कर देती; और वह इतनी हीन भी नहीं थी कि वह किसी की कृपा-दृष्टि की आशा लगाये बैठी रहे। हीनता उसमें थी ही नहीं; और मानिनीपन उसे शोभा न देता था। उसकी निर्व्याज स्वाभाविकता प्रयत्नपूर्वक कमाये हुए उदात्त चारित्र्य से भी कहीं ज़्यादा खिल उठी थी।

भगीरथ-विद्या में (इरिगेशन इंजीनियरिंग में) पानी के प्रवाह को ले जाने के छः तरीके बतलाये हैं। इनमें सबसे अजीब और ज़्यादा मुश्किल है वह, जिसमें एक प्रवाह से दूसरा प्रवाह ले जाना पड़ता है।

रेल की सड़कें तो इस प्रकार जाती हुई हमने बहुत-सी देखी हैं। पर जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दुस्तान में ऐसे जल-प्रवाह का यही एक उदाहरण है। अगर संस्कृति के प्रवाह की दृष्टि से विचार करें, तो सारा हिन्दुस्तान इसी तरह से भरा हुआ है। हरेक जाति की संस्कृति अलग और एक-दूसरे से कई बार मिलने पर भी एक-दूसरे से अछूती ही रही है।

: ६ :

सुवर्ण-देश की माता

इरावती कहें या ऐरावती ? मेरी समझ में इस नदी का नाम 'इरा' नाम की घास पर से ऐरावती पड़ा है। इसके किनारे की पौष्टिक घास चरनेवाले मस्त हाथी को ही ऐरावत कहते होंगे या फिर इन्द्र के ऐरावत के समान बड़े डील-डौलवाली और मत्त गजेन्द्र-गति से चलनेवाली इस नदी को देखकर किसी बौद्ध भिक्षु को सूझा होगा कि 'बस, इसी को हम ऐरावती कहें !'

लेकिन ऐतिहासिक कल्पना-तरंगों में कलोल करने का काम तो बैठे-ठाले लोगों का है, मुसाफ़िर को यह नहीं पुसाता।

अगर ऐरावती कहीं हिन्दुस्तान में होती तो संस्कृत के कवियों ने इसके वर्णन में ऐरावती जितना ही लम्बा-चौड़ा काव्य-प्रवाह बहा दिया होता। ब्रह्म देश के कवियों ने बहुत-से काव्य रचे भी हों, पर हमें उनका क्या पता ? ब्रह्मी भाषा न तो हमारी जन्म-भाषा है, न शास्त्रभाषा या राजभाषा। अपने पड़ोसी की भाषा सीखने की प्रवृत्ति हममें है ही कहाँ ? कोई अंग्रेज़ बर्मी भाषा सीखकर बर्मी कविता का अंग्रेज़ी तरजुमा करके हमें दे दे तो शायद वह हमें पढ़ने को मिल जाय।

कोई भी देश ऐरावती जैसी नदी पर अभिमान और एहसान ज़ाहिर कर सकता है। हम ब्रह्म देश में रंगून से उत्तर तरफ़, मॉडले तक ट्रेन में यात्रा कर चुके थे। हमने वहाँ से बहुत पास ही अमरापुरा जाकर पहली ही बार ऐरावती के दर्शन किये।

अगर हमें पहले ही से इस बात का पता लग जाता कि अमरापुरा के नज़दीक बुद्धदेव की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं तो हम उनके दर्शन से ही ऐरावती की यात्रा शुरू करते।

यहाँ भी नदी का पाट खूब चौड़ा है। आस-पास की धरती समतल होने से नदी भी गम्भीर दीख पड़ती है। उसका बहाव धीर और उदात्त हाथी की चाल जैसा है। ऐसी नदी की पीठ पर नाव या स्टीमलांच में बैठकर यात्रा करना जीवन में एक बड़ी खुशकिस्मती की बात है।

अमरापुरा से माँडले वापस आकर हम स्टीमलांच में बैठे। समुद्र की यात्रा जुदी, और नदी की जुदी ! नदी में बड़ी-बड़ी लहरें नहीं होतीं। दोनों तरफ़ का किनारा हमारा बराबर साथ देता जाता है। और ऐसा मालूम होता कि हम 'जीवन' का नाम धारण करनेवाले पर जान लेनेवाले महाभूत के शिकंजे में अच्छी तरह फँसे हुए हैं। शून्य और अनन्त आकाश में पृथ्वी का गोला जैसे अपनी सनातन यात्रा शान्ति से करता चला जाता है, उसी तरह नदी के प्रवाह में ये किश्तियाँ भी चुपचाप चलती हुई शान्ति का अपूर्व आनन्द प्रदान करती हैं। आज भी, जब इस ऐरावती की यात्रा का स्मरण करता हूँ, तब चणोंद कर्नाली के पास की द्रौपदी के जैसी नर्मदा की यात्रा, सीता जैसी ताप्ती की यात्रा, सागर-संगम तक की काशीतलवाहिनी भारत-माता गंगा की यात्रा, मथुरा-वृन्दावन की कृष्णसखी कालिन्दी की यात्रा, काश्मीर के नन्दनवन में पार्वती वितस्ता (झेलम) की यात्रा, और वनश्री के पीहर सदृश गोमांतक प्रदेश की जल-यात्रा, सभी एक साथ याद आ जाती हैं। इनमें भी तृप्तिकारक लम्बी यात्रा तो हमने वितस्ता और ऐरावती की ही की है। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्रा और नर्मदा से टक्कर लेनेवाली यही एक नदी है। ऐरावती का पाट और

प्रवाह देखते ही मन में ऐसा भाव उठता है, मानों यह कोई विशाल साम्राज्य के ऊपर राज करनेवाली सम्राज्ञी तो नहीं हैं। यह ठीक है कि आराकान और पेगुयोमा पहाड़ इसकी रक्षा करते हैं; फिर भी ऐरावती के प्रति सम्मान का भाव दिखलाने को वे बड़े आदर के साथ दूर ही खड़े हैं।

हमारा जहाज़ चल दिया। जैसे शाम होते ही गाय के बछड़े अपनी माँ के पास दौड़े चले आते हैं, उसी तरह आस-पास के लम्बे-चौड़े प्रदेश के श्रमजीवी किसान ऐरावती के किनारे इकट्ठे होते हैं। हमारा जहाज़ एक चलता-फिरता बाज़ार ही था। ज्यों ही कोई छोटा-मोटा बन्दरगाह आ जाता, वह अपनी सीटी बजाकर लोगों को न्योता दे देता। लोग उमड़ती हुई चींटियों के दल की तरह दौड़ते हुए आते और जहाज़ पर तरह-तरह की खाने-पीने की चीज़ों, बेंत के बरतनों, कारीगरी की वस्तुओं, तथा और भी कई दूसरी चीज़ों का बाज़ार-सा लग जाता। जहाज़ के अन्दर भी मुसाफ़िर व्यापारी लोग अपना-अपना माल लिये बैठे रहते। पक्षियों की चहचहाहट की तरह लेन-देन का बाज़ार गरम हो जाता। जो इनकी भाषा जानता है, वही इस जन-कोलाहल से ऊब सकता है। हमें क्या? लोग लड़ें-झगड़ें, चीखें-चिल्लायें, हमारे लिये यह सब एक-सा था। ऐसा लगता मानों यह एक बड़ा नाटक खेला जा रहा है। लेन-देन ख़त्म होते ही जहाज़ छूटता। हाल ही में बच्चा ब्यानेवाली भैंस की तरह हमारा जहाज़ झूमता-झामता चला। जहाज़ के एक नीच गोरे अधिकारी के साथ हमारी कुछ खटपट हो जाने से उस दिन की यात्रा का हमारा मज़ा कुछ किरकिरा-सा हो गया था; लेकिन मन्द-मन्द पवन के झोंकों में यह किरकिरापन उड़ गया और फिर हम कुदरत की तरह पहले ही जैसे प्रसन्न हो गये।

फिर एक बन्दरगाह आया। यहाँ पर तिजारत शायद कुछ ज्यादा होती होगी। छोटी-बड़ी अनगिनती किश्तियाँ नदी के किनारे कीचड़ में लोट रही थीं। ढोरों की पीठ पर जिस तरह मक्खियाँ भिनभिनाती हैं, उसी तरह गाँव के लड़के इन नावों पर उछलते-कूदते हुए खेल रहे थे। बर्मी लोग गोदना गुदाने के बड़े शौक़ीन हैं। इनके केवड़े जैसे गोरे चमड़े पर लाल और नीले गोदने बड़े ही सुन्दर लगते हैं। महाराष्ट्र के गाँवों में लोगों का यह विश्वास है कि इस जनम में शरीर पर ज़ेवरों को गोदने से अगले जनम में सोने के ज़ेवर और ललाट पर टीका और चाँद गोदने से अखंड सौभाग्य मिलेगा। कुछ इसी तरह का विश्वास इधर के लोगों में भी होना चाहिए, क्योंकि बहुत-से देहाती कमर से घुटनों तक सारे शरीर में रंग-बिरंगी लुंगी— तहमत—गुदाते हैं। इसलिए कई लोग नंगे ही नदी में नहाने के लिये धँस पड़े तो भी बग़ैर कपड़ों के वे नंगे नहीं मालूम होते थे। जहाज़ जहाँ ज्यादा देर ठहरता, हम किनारे पर उतरकर पास के गाँवों में घूम आते। बर्मी घरों और मोहल्लों से हमारी आँखें अच्छी तरह परिचित हो चुकी थीं। गोकि हम इन लोगों की बोली नहीं समझते थे; फिर भी इन भोले-भाले देहातियों का जीवन हमारे लिए परिचित-सा ही हो गया था। राजकाजी और व्यापारी लोगों के राग-द्वेष को अगर हम निकाल फैंकें और धार्मिक या अधार्मिक लोगों की कल्पनासृष्टि को एक तरफ़ रख दें, तो फिर सारी मनुष्य-जाति एक ही कुटुम्ब-कबीला है। मेरे ख्याल में दुनिया भर के गाँव एक ही से होने चाहिए।

हमें इस यात्रा में जगह-जगह स्तूप और मंदिर लगातार मिलते ही जाते थे, मानों नदी के प्रवाह-संगीत के बीच-बीच में ताल बज रहे हैं। ऊँची-ऊँची टेकरियाँ और पहाड़ों की चोटियाँ

ही मनुष्य को प्यारी रही हैं। और जब नील नदी की तरह विशाल ऐरावती चारों दिशाओं में अपनी कृपा का उत्पात मचाती है, तब तो वे ऊँचे-ऊँचे स्थान ही आश्रय-स्थान बनते हैं। मनुष्य उसके प्रति अपना एहसान मंदिर बनवाकर ज़ाहिर न करे तो फिर किस तरह करे ? प्रकृति ने हमें यही सिखाया है, कि लहलहे हरे पत्तों में पीले-पीले पके हुए फल अपनी पूरी मस्ती दिखा सकते हैं, इस पाठ से फ़ायदा उठाकर लोगों ने वृक्षों के बीच में मंदिर बनवाकर उन पर आकाश की अनन्तता का दर्शन करानेवाली सोने की उँगलियाँ ऊँची उठा रक्खी हैं। जो लोग यह मानते हैं कि कुदरत की सुन्दरता को इंसान बढ़ा नहीं सकता, उन्हें एक बार आकर ये ऊँचे-ऊँचे शिखर अवश्य देखने चाहिएं।

दोपहर का वक्त था। अंग्रेज़ी जाननेवाले एक बर्मी कालेज के विद्यार्थी के साथ हम बातें कर रहे थे। इतने में एक शांत आवाज़ सुनाई पड़ी। छिंदवीन नदी अपना कर लेकर ऐरावती से मिलने आई थी। दोनों का कैसा प्रेम-मिलन था ! समर्थ रामदास और तुकाराम आपस में मिले हों या भवभूति शतरंज खेलनेवाले कालिदास को अपना 'उत्तर रामचरित' सुना रहे हों— कुछ ऐसा ही था वह दृश्य !

कल्पना द्वारा तो मैं छिंदवीन के अजनवी प्रदेश में शान-राज्य तक सैर भी कर आया हूँ। वहाँ मुझे हाथ में तीर-कमान या कुल्हाड़ी लेकर फिरनेवाले बेफ़िक्र कई जंगली लोग मिले। ज़रा भी शक हो जाने पर हमारी जान ले लेनेवाले, और विश्वास हो जाय तो हमारे लिये अपने प्राण भी न्यौछावर कर देनेवाले इन प्रकृति के बच्चों का दर्शन हमें तो सभ्यता की कीचड़ को धो डालनेवाले मंगल-स्नान जैसा लगा। जहाज़ का पक्षी कितना ही क्यों न उड़े; अन्त में वह जहाज़ ही पर लौट आता

है *, उसी तरह कल्पना भी जंगल की सैर करके फिर वापस जहाज़ पर आ गयी; क्योंकि हम पकोकु बंदर पर पहुँच गये थे। पकोकु के पास कीचड़वाली नदी में नहाकर और एक बर्मी सज्जन की मेहमानी ग्रहण कर हम फिर जहाज़ पर सवार हुए और मिट्टी के तेल के कुँए देखने के लिये येननजांव तक गये। यह कहा जा सकता है, कि यहाँ अमेरिमन मज़दूरों की हुकूमत चलती है। आसपास वन-शोभा नहीं के बराबर है। यहाँ एक ओर तो इन घासलेटी कुँओं का आधुनिक क्षेत्र, और दूसरी ओर टेकरी पर छोटे-से प्राचीन बौद्ध मंदिर का तीर्थक्षेत्र, दोनों को देखकर मन में कई विचार उठे। मंदिर की कारीगरी में हाथी के मुँहवाला एक पक्षी लकड़ी के खंभे में खुदा हुआ था। इस तरह और भी कई मिलावटवाली चीज़ें यहाँ देखने में आयीं। पास ही के मठ में कुछ बौद्ध साधु मधुर आलाप के साथ सायंकाल की प्रार्थना कर रहे थे। बिना किसी तरह के पक्षपात के ऐरावती घासलेट के कुँओं के पंपों का कोलाहल अपने कलेजे पर इस तरह बर्दाश्त करती है और "अनिच्चा बत संखारा उप्पाद व्ययधाम्मिणो" का श्रांत और चिरंतन संदेश भी धारण करती है। अमेरिका की ताक़त का भले ही जोड़ न हो, फिर भी वह भू-खंड एक बच्चा ही कहा जायगा न? उसे जीवन का रहस्य इतनी जल्दी कैसे हाथ लग सकता है? उसे तो नदी के किनारे तीन-तीन हज़ार फ़ीट गहरे कुँए खोदकर मिट्टी का तेल निकालने की ही बात सूझ सकती है। दुनिया की तमाम चीज़ें पैदा होती हैं और मिट जाती हैं। सभी नाशवान और व्यर्थ हैं; असार हैं, सार तो सिर्फ़ इसमें से बचकर निर्वाण (मोक्ष) पाने में है—इस

* श्री सूरदास ने ही कहा है:

जैसे उड़ि जहाज़ कौ पंछी, फिरि जहाज़ पै आवै।

बात को कौन अमेरिकन मान सकता है ? पर ऐरावती तो उत्साह के कारण कभी ज्ञान से इन्कार नहीं करेगी, और न ज्ञान के भार से अपने उत्साह को खो बैठेगी। उसे तो महासागर में लीन होना है और अपने इस विलीनता के आनन्द को सदा अखंड भी बनाये रखना है।

येननजांव से हम प्रोम तक गये, और वहाँ ऐरावती से विदा हुए। यहाँ से आगे चलकर यह महानदी कई धाराओं में समुद्र से मिलती है। सचमुच ऐरावती तो सुवर्ण-देश की माता है !

: ७ :

दक्षिण-गंगा गोदावरी

१

हम बचपन में सवेरे उठकर, मराठी की प्रभातियाँ गाते थे—जिनकी ये चार सतरें तो आज भी याद हैं :

उठोनियाँ प्रातःकालीं। वदनी वदा चन्द्रमौली।
श्री बिंदुमाधवा जवलीं। स्नान करा गंगेचे। स्नान करा गोदेचे॥

× × × ×

कृष्णा वेण्या तुंगभद्रा। सरयू कालिंदी नर्मदा।
भीमा भामा मुख्यगोदा। करा स्नान गंगेचे॥

गंगा और गोदावरी एक ही हैं, दोनों के माहात्म्य में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं है, अगर कुछ हो भी, तो इतना ही कि कलिकाल के पाप के कारण गंगा का माहात्म्य चाहे किसी क़दर कम हो भी जाय, मगर गोदावरी का माहात्म्य किसी काल में कम होनेवाला

नहीं है। श्री रामचंद्र के अत्यंत सुख के दिन इसी गोदावरी के तीर पर बीते, और जीवन का दारुण आघात भी उन्हें यहीं सहन करना पड़ा। गोदावरी सचमुच दक्षिण की गंगा है।

कृष्णा और गोदावरी, इन दो नदियों ने दो महान् प्रजाओं का पालन-पोषण किया है। अगर यह कहें कि महाराष्ट्र का स्वराज्य और आंध्र का साम्राज्य, इन्हीं दो नदियों का चिरऋणी है तो इसमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं। साम्राज्य बने और बिगड़े, महान् राष्ट्र चढ़े और गिरे; लेकिन इस ऐतिहासिक भूमि में ये दो नदियाँ अखंड रूप से बहती ही जा रही हैं। ये नदियाँ भूतकाल के गौरवशाली इतिहास की जितनी साक्षी हैं, उतनी ही भविष्यकाल की बड़ी-बड़ी आशाओं की प्रेरक भी हैं। इनमें भी गोदावरी का माहात्म्य तो कुछ अनोखा ही है। वह जितनी जलसम्पन्न है, उतनी ही इतिहास-समृद्ध भी है। जिस तरह श्रीकृष्ण के जीवन में सर्वत्र विविधता-ही-विविधता और एक-सा उत्कर्ष, भरा हुआ है उसी तरह गोदावरी के अतिदीर्घ प्रवाह के तीर पर भी सृष्टि-सौंदर्य अपनी विविधता और बिपुलता को लिये चारों ओर बिखरा पड़ा है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की एक कल्पना में से जिस तरह सृष्टि का विस्तार होता है; बाल्मीकि की कारुण्यपूर्ण वेदना से जिस प्रकार रामायणी सृष्टि का विस्तार हुआ, उसी तरह त्र्यंबक पहाड़ के कगार से टपकती हुई गोदावरी में से ही आगे जाकर राजमहेन्द्री की विशाल जल-राशि बनी है। जिस तरह सिन्धु और ब्रह्मपुत्रा को हिमालय का आलिंगन करने की सूझी, जिस प्रकार नर्मदा और ताप्ती को विंध्या-सतपुड़ा को पिघलाने की सूझी, उसी प्रकार गोदावरी और कृष्णा को दक्षिण का ऊँचा प्रदेश तर करके, उसे धन-धान्य से सम्पन्न करने की सूझी। ऐसा जान पड़ता है, मानों इन दोनों नदियों की सह्याद्रि पर्वत का पश्चिम की ओर ढल

पड़ना कुछ पक्षपातपूर्ण-सा मालूम हुआ और इसलिए मानों ये उसे पूर्व की ओर खींचने की लगातार कोशिश कर रही हैं।

इन दोनों नदियों के उद्गम-स्थान पश्चिमी समुद्र से ५०–७५ मील से अधिक दूर नहीं हैं; फिर भी दोनों ८००–९०० मील की लंबी यात्रा करके अपना जल-भार या कर-भार पूर्व-समुद्र को ही अर्पण करती हैं। और यह कर कोई मामूली नहीं है। उसके अंदर सारा महाराष्ट्र देश आ जाता है, हैदराबाद और मैसूर के राज्य भी उसी में समा जाते हैं, और सारा-का-सारा आंध्र-देश भी। गोदावरी के सामने मिश्र-देश की संस्कृति की माता नील नदी कोई चीज ही नहीं।

त्र्यंबक के सामने पहाड़ की एक बड़ी दीवार में से गोदावरी निकलती है। त्र्यंबक गाँव से जो चढ़ाई शुरू होती है, वह गोदा मैया की मूर्ति के चरणों तक चली ही जाती है। वहाँ से ऊपर जाने के लिए बाईं ओर विकट सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और इस तरह मनुष्य ब्रह्मगिरि तक पहुँच सकता है। पर वह दुनिया ही कुछ जुदी है। गोदावरी के उद्गम-स्थान से जो दृश्य दीख पड़ता है, वह हमारे वातावरण के लिए बहुत अनुकूल है। महाराष्ट्र के तपस्वियों और राजाओं ने समान भाव से इस जगह अपनी भक्ति-भावना की अंजलि चढ़ायी है। कृष्णा के किनारे वाई, सतारा और गोदावरी के किनारे नासिक और पैठण, महाराष्ट्र की सच्ची राजधानियाँ हैं।

किन्तु गोदावरी का सच्चा इतिहास तो परमसहिष्णु रामचन्द्र और दुःखमूर्ति सीता माता के वृत्तांत से ही शुरू होता है। राजपाट छोड़ते समय राम को दुःख नहीं हुआ, पर गोदावरी के तीर सीता और लक्ष्मण के साथ मनाये हुए आनन्द का अन्त होने पर राम का हृदय तो एकदम सौ-सौ टुकड़े हो गया। भेड़ियों और

बाघों के अभाव में जो हिरण निर्भय हो गये थे, आर्य रामचन्द्र की दुःखोन्मत्त आँखें देखकर वह भी दूर भाग गये होंगे और सीता की खोज में देवर लक्ष्मण की दहाड़ें सुनकर तो बड़े-बड़े हाथी भी डर से काँप उठे होंगे, और गोदावरी का तरल जल पशु-पक्षियों के दुःखाश्रुओं से कसैला हो गया होगा। हिमालय में जैसे पार्वती थीं, वैसे जनस्थान में सीता सारे विश्व की स्वामिनी थीं। उनके चले जाने पर अगर प्रलयकाल का-सा सार्वभौम दुःख फैला हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

राम और सीता तो फिर भी मिले; पर जनस्थान का वियोग तो हमेशा के लिए बना ही रहा। आज भी नासिक-पंचवटी में घूम-घूमकर देखें, चौमासे में जाओ या गरमी में, ऐसा लगता है मानों सारी पंचवटी जटायु की तरह शोक से कातर होकर 'हा सीता! हा सीता!' पुकार रही है। महाराष्ट्र के साधु-संतों ने अगर अपनी मंगलमयी वाणी यहाँ न फैलायी होती तो जनस्थान एक भयंकर और ऊजड़ प्रदेश हो गया होता। गरमी का ताप ढाँकने के लिये जैसे हरी-हरी सृष्टि चारों ओर फैल जाती है, उसी तरह साधु-संत भी जीवन की विषमता को भुला देने के लिए सर्वत्र विचरते हैं, यह कैसा सौभाग्य है! जब-जब नासिक त्र्यंबक की ओर जाता हूँ, वनवास के लिए इसी जगह को पसंद करने वाले राम-लक्ष्मण की आँखों से सारा प्रदेश देखने को दिल ललचाता है; पर हर बार कंपित तृणों में भी सीता माता की कातर देह-यष्टि ही दीख पड़ती है। रामभक्त समर्थ रामदास जब यहाँ रहते थे तब उनके हृदय में कैसी उमंग उठती होगी! श्री समर्थ ने गोदावरी के किनारे गोबर के हनुमान की स्थापना भला किस मतलब से की थी? क्या इसलिए कि अगर पंचवटी में हनुमान होते तो ये सीता-माता का हरण कभी न होने देते। लक्ष्मण को

कठोर वचनों से घायल करके सीता ने अपने ऊपर एक महान संकट ओढ़ लिया था। हनुमान को वे ऐसी कोई चुभती बात न कह पातीं; पर जन-स्थान और किष्किधा के बीच में बड़ा अंतर है, और गोदावरी कुछ तुंगभद्रा थोड़े ही है?

२

राम-कथा का करुणरस त्रेता-युग से आज तक बहता ही आ रहा है। उसे कौन कम कर सकता है? इसलिए आइये, हम हरिजनों के भैंसे के मुँह से वेदमंत्र का पाठ करवा देनेवाले श्री ज्ञानेश्वर महाराज से मिलने के लिए पैठण तरफ़ चलें। जिस तरह गोदावरी दक्षिण की गंगा है, उसी तरह उसके किनारे पर बसी हुई प्रतिष्ठान नगरी दक्षिण की काशी मानी जाती थी। यहाँ के दशग्रन्थी ब्राह्मणों द्वारा दी हुई व्यवस्था चारों वर्णों को माननी पड़ती थी। बड़े-बड़े सम्राटों के ताम्र-पत्रों से भी बढ़कर यहाँ के ब्राह्मणों के व्यवस्था-पत्रों को मान दिया जाता था। यह तो ज्ञानेश्वर महाराज की ही सामर्थ्य थी कि ऐसे स्थान में भी उन्होंने शास्त्र-धर्म को हराकर हृदय-धर्म को जिताया। संन्यासी शंकराचार्य के ऊपर किये गये अत्याचार की स्मृति को क़ायम बनाये रखने के लिए जिस तरह उस देश के राजा ने नंबूद्री ब्राह्मणों पर कुछ कड़े रिवाज़ लाद दिये थे, उसी तरह अगर कोई राजा संन्यासी-पुत्र ज्ञानेश्वर का शिष्य होता तो शायद वह भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों को सख़्त सज़ा देता और कहता कि तुम लोगों को जनेऊ पहनने का आयंदा कोई अधिकार नहीं है।

जैसे हाथ की उंगलियों का पंखा बन जाता है, वैसे ही बड़ी-बड़ी नदियों में आकर मिली हुई और अपने आपको मिटा देने की क्रिया का कठिन योग साधनेवाली छोटी-छोटी नदियों का भी पंखा-सा बन जाता है। सह्याद्रि और अंजना के पहाड़ों की

कगारों पर जितना भी पानी बरसता है, उस सबको खींच-खींच कर मैदान में बहा देने का काम ये नदियाँ करती हैं। धारणा और कादवा, प्रवरा और मुला को छोड़ देने पर भी मध्यभारत से दूर-दूर का पानी लाती हुई वर्धा और बैनगंगा को कैसे भूल जायँ ? जिसने दो मिलकर एक बनी हुई यहाँ की एक नदी का 'प्राणहिता' नाम रक्खा, उसके मन में कितनी कृतज्ञता, कितना काव्य और कितना आनन्द भरा होगा ! और ठेठ ईशान दिशा के कोने से पूर्व-घाट का पानी ला देनेवाली अष्टवक्रा, इंद्रावती और उसकी सखी श्रमणी तपस्विनी शबरी को प्रणाम किये बिना कैसे आगे बढ़ सकती है ?

गोदावरी की सारी कला तो भद्राचलम् से ही देखी जा सकती है। जिसका पाट एक से दो मील तक चौड़ा है, ऐसी गोदावरी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच में से होकर अपना रास्ता साफ़ करती हुई जब सिर्फ़ दो सौ गज़ की खाई में होकर निकलती होगी तब भला वह क्या सोचती होगी ? अपनी तमाम ताक़त और तरकीब ख़र्च करके बड़े ही नाज़ुक मौके में से निकलकर राष्ट्र को आगे ले चलनेवाले किसी राष्ट्रपुरुष की तरह दुनिया को आश्चर्य में डालनेवाली गर्जना के साथ वह यहाँ से निकलती है। घोड़ा-बाढ़ और हाथी-बाढ़ की बातें तो हम सुनते रहे हैं ; लेकिन एकदम पचास फुट जितनी ऊँची बाढ़ क्या कभी कल्पना में भी आ सकती है ? मगर जो कल्पना में संभव नहीं है, वह गोदावरी के प्रवाह में संभव है। तंगगली से होकर निकलते हुए पानी को अपनी सतह सपाट बनाये रखना मुश्किल हो जाता है। अर्घ्य देते समय जैसे अंजलि में छोटे मुँह की नाली-सी बन जाती है वैसे ही खाई में से निकलते हुए पानी की सतह की भी एक भयानक नाली बन जाती है। मगर अद्भुत रस का

चमत्कार तो इसके आगे है। इस नाली में से अपनी नाव को ले जानेवाले कई हिम्मतवर मल्लाह भी वहाँ पड़े हुए हैं। नाव के दोनों ओर पानी की ऊँची-ऊँची दीवालों को नाव के ही वेग से दौड़ती हुई देखकर मनुष्य के मन में क्या होता होगा!

भद्राचलम् से राजमहेन्द्री या धवलेश्वर तक अखंड गोदावरी बहती है। उसके बाद 'त्यागाय संभृतार्थानाम्' १ का सनातन सिद्धान्त उसे याद आया होगा। यहीं से गोदावरी ने जीवन-वितरण करना शुरू किया। एक किनारे पर गौतमी गोदावरी हैं, और दूसरे किनारे पर वसिष्ठ-गोदावरी, बीच में कई टापू और अन्तर्वेदी प्रदेश हैं; और इन प्रदेशों में गोदावरी के मीठे जल और सोने-जैसी मिट्टी से पैदा होनेवाले धान से पुष्ट होकर वेद-घोष करनेवाले ब्राह्मण रहते हैं। ऐसे समृद्ध देश को स्वतन्त्र रखने की शक्ति जब हमारे देशवासी खो बैठे तब डच, अंग्रेज़ और फ्रेंच लोग गोदावरी के किनारे पड़ाव डालने को इकट्ठे हुए। आज भी यानाम में फ्रान्स का तिरंगा झंडा फहरा रहा है।

३

मद्रास से राजमहेन्द्री जाते हुए बेजवाड़े से आगे सूर्योदय हुआ। बरसात के दिन थे। इसलिए पूछना ही क्या? जहाँ-तहाँ विविध छटावाली हरियाली फैल रही थी। और हरियाली का इस तरह ज़मीन पर पड़ा रहना जिन्हें नागवार लग रहा हो ऐसे ताड़ के पेड़ जहाँ-तहाँ खड़े हुए इस तरह दिखाई पड़ते थे, मानों हाथ में बड़े-बड़े गुलदस्ते लेकर उछाल रहे हैं। पूर्व की तरफ़, एक नहर रेल की सड़क के किनारे-किनारे बह रही थी। पर किनारा ऊँचा होने के कारण, उसका पानी हमें कभी-कभी दीख

१ त्याग—दान—करने के लिये ही धन-दौलत जमा करनेवाले।

पड़ता। सिर्फ़ तितली की तरह अपने-अपने पाल फैलाकर कतार में खड़ी हुई नौकाओं पर से ही हमें नहर का अनुमान करना पड़ता था। बीच-बीच में छोटे-बड़े तालाब भी मिलते। इनमें रंग-बिरंगे बादलोंवाला आसमान नहाने के लिये उतरता हुआ दिखाई पड़ता और इससे पानी की गहराई और भी अथाह हो जाती। कहीं-कहीं चंचल कमलों के बीच खामोश खड़े हुए बगुलों को देखकर सवेरे की ठंडी-ठंडी हवा का अभिनन्दन करने को मन मचल पड़ता। इस तरह कविता-प्रवाह में से बहकर जाते हुए कोव्वूर स्टेशन आ गया। मन में यह उमंग भरी हुई थी कि अब यहीं से गोदा-मैया के भी दर्शन होने लगेंगे। पुल पर से गुजरते वक्त दाँयें देखेंगे या बाँयें हम इसी उधेड़-बुन में थे। पुल आ गया और भगवती गोदावरी का अत्यन्त विशाल विस्तार दिखाई पड़ा। मैंने गंगा, सिन्धु, शोणभद्र, ऐरावती जैसी महानदियों के विशाल प्रवाह जी भरकर देखे हैं। बेजवाड़े में कृष्णा माता के दर्शन के लिए मैं हमेशा मग़रूर बना रहूँगा; लेकिन राजमहेन्द्री के आगे गोदावरी की शान-शौक़त ही कुछ निराली है। इस जगह पर मैंने जितने भव्य-काव्य का या प्रकृति के ठाठ-बाट का अनुभव किया उतना शायद ही कहीं दूसरी जगह किया हो। पश्चिम की तरफ़ नज़र फैलाई तो दूर-दूर तक पहाड़ियों का झुण्ड नज़र आया। आसमान में बादल घिरे रहने से सूरज की धूप का कहीं नाम-निशान तक न था। बादलों का रंग साँवला होने के कारण गोदावरी के धूलि-धूसरित—मटमैले—जल की झाईं और भी गहरी हो रही थी। भला, ऐसे समय भवभूति की याद क्यों न आती? ऊपर की ओर नीचे की झाईं के कारण इस सारे दृश्य पर वैदिक प्रभात की शीतल और स्निग्ध सुन्दरता छाई हुई थी। और

टेकरियों पर कुछ उतरे हुए धौले-धौले बादल तो बिलकुल ऋषि-मुनियों जैसे लगते थे। इस सारे दृश्य का वर्णन किया ही कैसे जा सकता है ? इतना यह सारा पानी कहाँ से आता होगा ? विपत्तियों में से विजय-सहित पार हुआ राष्ट्र जिस तरह वैभव की नई-नई छटायें बतलाता जाता है और चारों तरफ़ अपनी समृद्धि फैलाता जाता है, उसी तरह गोदावरी का यह अखण्ड प्रवाह पहाड़ों में से निकलकर अपने गौरव को साथ में लिये हुए आता हुआ दिखाई पड़ता है। छोटे-बड़े जहाज़ तो नदी के बच्चे हैं, जो माता के स्वभाव से परिचित होने के कारण उसकी गोद में मनमाना नाचें, खेलें और उछलें-कूदें तो उन्हें इससे रोकनेवाला है कौन ? लेकिन बच्चों की उपमा तो इन नावों की अपेक्षा प्रवाह में जहाँ-तहाँ पड़ती हुई भँवरों को देनी चाहिए। कुछ देर दीख पड़ीं, थोड़ी ही देर में भयानक तूफ़ान का स्वाँग रचा, और एक ही पल में खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। ये भँवरें न जाने कहाँ से आतीं और कहाँ चली जाती हैं ?

ऐसे लम्बे-चौड़े और भारी पाट के दरमियान अगर टापू न हों तो इनकी कमी ही रह जाय। गोदावरी के टापू ख़ूब प्रसिद्ध हैं। कई तो पुराने धर्म की तरह जहाँ-के-तहाँ स्थिर रूप होकर जमे हुए हैं। और कई एक कवि की प्रतिभा की तरह क्षण-क्षण भर में स्थल की नवीनता उत्पन्न कर लेते और नया-नया रूप ग्रहण करते हैं। इन टापुओं में अनासक्त बगुलों को छोड़ और कौन रहने जाय ? और जब बगुले चलते हैं तो वे उन पर अपने पैरों के गहरे निशान छोड़े बग़ैर और जगह कैसे जायँ ? अपने धवल चरित्र का अनुकरण करनेवालों के लिये चरणचिन्हों द्वारा अगर वे दिशा-सूचन न करें तो वे बगुले ही कैसे ?

नदी का किनारा यानी मनुष्य की कृतज्ञता का अखंड

उत्सव। किनारे पर के सफ़ेद महल और मंदिर और उनके ऊँचे-ऊँचे शिखर ही एक अखंड उपासना है। परन्तु इतने ही से काव्य सम्पूर्ण नहीं हो जाता। इसलिए भक्त लोग नदी की लहरों पर से मंदिरों के घंटानाद की लहरों को इस पार से उस पार तक पहुँचाते रहते हैं। संस्कृति के उपासक भारतवासी इसी जगह गंगा-जल के आधे कलश गोदावरी में उँडेलते और फिर गोदावरी के जल से कलश भरकर ले जाते हैं। कितनी भव्य विधि है! कितना पवित्र काव्य है! यह भक्ति-रव * तो हृदय-हृदय में भरा हुआ है। और मंदिरों के घंटानाद और इस हृदयनाद को तो पूर्व स्मृति ने ही सुनाया। कानों को तो सिर्फ़ ऐंजिन की आवाज़ ही सुनाई पड़ रही थी, अगर हम आधुनिक संस्कृति के इस प्रतिनिधि से नफरत करना छोड़ दें तो रेल के पहिये का ताल कुछ कम आकर्षक नहीं लगता और पुल पर तो उसका विजयनाद संक्रामक—दूर-दूर तक फैल जानेवाला—होकर ही रहता है।

पुल पर गाड़ी अच्छी तरह चलने के बाद मुझे ख्याल आया कि पूरब की तरफ देखना तो छूट ही गया। हमने इस तरफ घूमकर देखा तो वहाँ निराली ही रौनक नज़र आई। पश्चिम तरफ गोदावरी जितनी चौड़ी थी, उससे भी कहीं ज्यादा पूरब में थी। उसे अनेक मार्गों से और उत्तेजित होकर समुद्र में मिलना था। सरित्पति से सरिता मिलने जाय, तब उसे संभ्रम—घबराहट और उत्तेजना तो होगी ही; पर गोदावरी तो धीरोदात्त माता ही ठहरी। उसका संभ्रम भी उदात्तरूप में ही प्रकट हो सकता है। इस ओर के टापू कुछ और ही किस्म के थे। उनमें बनश्री की शोभा पूरी-पूरी खिल रही थी। ब्राह्मणों या किसानों के झोंपड़े इस ओर

* रव = शब्द

से दिखाई नहीं पड़ते थे। अगर बहते हुए पानी के हमले के सामने टक्कर लेते इन दो टापुओं में किसी ने ऊँचे महल बनाये होते तो वे दूर से ही दीख पड़ते। कुदरत ने तो सिर्फ़ ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की विजयपताकायें खड़ी कर रक्खी थीं और बाईं ओर राजमहेन्द्री और धवलेश्वर का सुखी जन-समाज आनन्द मना रहा था। ऐसे दुर्लभ दृश्य के दर्शन से तृप्त होने से पहले ही दाहिनी ओर नदी के किनारे से सटकर मस्ती और अल्हड़पन के साथ बहते हुए काँस की सफेद कलँगियों का स्थावर प्रवाह दूर-दूर तक जाता हुआ नजर आ रहा था। नदी के पानी में उन्माद था, उसमें लहरें न थीं। कलँगियों के इस प्रवाह ने हवा के साथ जो षड़यंत्र रचा था, उससे वह मनमानी ऊँची हिलोरें उछाल सकता था। जहाँ तक दृष्टि दौड़ सकती थी वहाँ तक देखा, और दृष्टि की पहुँच यहाँ कम ही क्यों हो? लेकिन काँस की कलँगियों का प्रवाह तो बहता ही जा रहा था। गोदावरी के प्रवाह के साथ होड़ करते हुए भी उसे संकोच न होता था। और वह संकोच क्यों करे? गोदावरी माता के विशाल तट पर इसने क्या कम स्तन्यपान किया था?

माता गोदावरी! राम-लक्ष्मण और सीता से लेकर बूढ़े जटायु तक सबको तूने ही स्तन्य-पान कराया है। तेरे तट पर शूरवीर भी पैदा हुए हैं और बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी भी। संतसाधु भी जन्मे और धुरंधर राजनीतिज्ञ भी पैदा हुए। देश-भक्त पैदा हुए और ईश्वर-भक्त भी। चारों वर्ण की तू माता है। मेरे पूर्वजों की तू अधिष्ठात्री देवता है। नयी-नयी आशाओं को लेकर मैं तेरे दर्शन के लिए आया हूँ। दर्शन से तो कृतार्थ हो गया हूँ; पर आशाएँ अभी तृप्त नहीं हुई। जिस प्रकार तेरे किनारे श्रीरामचन्द्र ने दुष्ट रावण के नाश का संकल्प किया था, वैसा

ही संकल्प कब से मैं किये हुए हूँ। तेरी कृपा होगी तो हृदय में से उसी तरह देश में से—रावण का राज्य मिट जायगा। राम-राज्य की स्थापना होते देखूँगा, और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा। और कुछ नहीं तो काँस की कलँगी के प्रवाह की तरह तू मुझे उन्मत्त बना देना, जिससे बिना संकोच के एक ध्यान लगाकर माता की सेवा में निरत रह सकूँ और बाक़ी सबकुछ भूल जाऊँ। तेरे जल में अमोघ शक्ति है, तेरे पानी की एक बूँद का सेवन भी व्यर्थ नहीं जाता।
